IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अरविंद घोश तथा जवाहर लाल नेहरु का समकालीन परिवे”ा में राजनैतिक एवं राश्ट्रवादी दृश्टिकोण

Ms.PRATIMA JOON

PH.D RESEARCH SCHOLAR

NORTH EAST FRONTIER ARUNACHAL PRADESH

सारां”ा

भारतीय स्वाधीनता–संघर्ष की महागाथा असंख्य कष्टों एवं बलिदानों की कहानी है। इसे अनगिनत वीरों एवं देशभक्तों ने अपन रक्त से सींचा है। उनका महान तप और त्याग ही स्वाधीनता का मंगल–मुहूर्त लाया। स्वाधीन भारत में उत्पन्न एवं पालितदृपोषित पीढ़ियों के लिए संभवतः यह अनुमान लगाना कठिन होगा कि परतन्त्र देश में, दासता के बन्धनों में, जीने का क्या अर्थ है और जिन पूर्वजों ने इस स्थिति के विरूद्ध संघर्ष किया, उन पर क्या बीती होगी? आज कितने युवक युवतियों अथवा बाल–बालिकाओं को इसका आभास है कि एक समय था, जब खादी पहनना और गाँधी टोपी लगाना विद्रोह का प्रतीक समझा जाता था। उस समय मातृभूमि के गीत गाना भी अपराध माना जाता था। राष्ट्रीय नारा 'वन्दे मातरम्' के उच्चारण करने मात्र से लोग काराग्रह में बन्द कर दिये जाते थे। किन्तु देशप्रेमी सत्याग्रही 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा लगात हुए तिरंगा राष्ट्रीय ध्वज उठाये आगे बढ़ते थे, लाठियाँ, गोलियाँ खाते थे, किन्तु झण्डे को नहीं झुकने देते थे। कितने ही स्वतन्त्रता प्रेमी अपने सर्वस्व की आहुति देकर मातृभूमि भी गोद में विलीन हो जाते थे, परन्तु जो शेष रह जाते थे, व मंजिल की ओर बढ़ते रहते थे। उस समय भारत के प्रत्येक स्त्री–पुरुष में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भर चुकी थी और सम्पूर्ण राष्ट्र के नागरिक अपने देश को स्वतन्त्र करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद एक मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विचार है। राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए एकता का आधार प्राप्त होना आवश्यक है। भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, समान ऐतिहासिक धरोहर, भौगोलिक एकता तथा आर्थिक हित ऐसे कई तत्व हैं जिनकी सहायता से राष्ट्र का विचार उत्पन्न होता है और अन्त में राष्ट्रवाद की भावना का विकास होता है। संक्षेप में, राष्ट्रवाद से तात्पर्य राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र ही सर्वोपरि होता है और उस राष्ट्र के नागरिक

राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अपना सब कुछ अपने राष्ट्र पर कुर्बान करने के लिए आतुर रहते हैं। यही राष्ट्रीय भावना लोगों को हर परिस्थिति में एकता के सूत्र में बाँधे रखती है।[1]

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से राष्ट्रवाद का जन्म यूरोप में राष्ट्र–राज्यों के निर्माण के दौरान हुआ। 19वीं और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, इसने यूरोप में पुनर्गठन, इटली और जर्मनी के एकीकरण, एशिया और अफ्रीका की राजनीति जागृति में एक प्रभावशाली शक्ति का काम किया। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रवाद को प्रजातन्त्र, उदारवाद तथा संवैधानिक और नागरिक स्वतन्त्रताओं के साथ जोड़ा गया। इसके पश्चात् इस विचारधारा ने आक्रामक रूप धारण कर लिया और यह सैनिक और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा अपने राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के प्रयत्नों तथा साम्राज्यवाद का प्रतीक बन गई। 20वीं शताब्दी में यह फासीवाद तथा अन्य सर्वाधिकारवादी आन्दोलनों के एक अनिवार्य तत्व के रूप में और उपनिवेशों में बसे लोगों के लिए एक विद्रोही शक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुई।

भारत में राष्ट्रवाद का अंकुर 19वीं शताब्दी में प्रस्फुटित होने लगा। परन्तु इससे भी पहले, 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने भारत में राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अंग्रेजों ने सख्ती के साथ 1857 की क्रान्ति को तो दबा दिया परन्तु इसके पश्चात् सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय भावना से जागृत होकर समय–समय पर विभिन्न आन्दोलनों ने, अनेक भारतीय विचारकों ने और विविध घटनाओं ने राष्ट्रीय चेतना को अधिकाधिक बल प्रदान किया, एक ओर राष्ट्रवाद को आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक आधारों पर प्रकल्पित किया गया, वही दूसरी ओर स्वराज्य के भिन्न–भिन्न अर्थ प्रस्तुत किये गये हैं। स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ी प्रत्येक घटना चाहे वह 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम हो, 1919 में जलियांवाला बाग मे निर्दोष भारतीयों पर, जनरल डायर द्वारा चलाई गई गोलियाँ, 1920 में गान्धी जी द्वारा चलाया असहयोग आन्दोलन, 1922 में, चौरा–चोरी घटना, 1928 में साइमन कमीशन का आगमन और उसका विरोध, 12 मार्च, 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन आदि इन सभी घटनाओं ने भारतीय लोगों में राष्ट्रीय भावना को तीव्रगति से जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर इसी राष्ट्रीय भावना में भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधा, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण राष्ट्र के नागरिक अपने देश को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करवाने में सफल हुए। अन्ततः भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हुआ।

भारतीय राष्ट्रवाद के विषय में समय–समय पर अनेक विचारकों ने अपने विचार दिये। कुछ विचारकों ने उदारवाद के सन्दर्भ में तथा कुछ विद्वानों ने उग्र राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये। राष्ट्रवाद के बारे में स्वामी दयानन्द, बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू ने भी अपने विचार दिए। अरविन्द घोष ने जहाँ आध्यात्मिक राष्ट्रवाद अर्थात् राष्ट्रवाद को धर्म व आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया। वहीं जवाहर लाल नेहरू ने धर्म–निरपेक्षता पर आधारित राष्ट्रवाद का विचार प्रस्तुत किया। उदारवादो विचारकों ने राष्ट्रवाद को अपने अलग ढंग से

[1] जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1963, पृ०48

प्रस्तुत किया और उग्रवादी विचारकों ने राष्ट्रवाद को अलग ढंग से, परन्तु दोनों विद्वानों का उद्देश्य एक ही था, भारत को स्वतन्त्र करवाना। यद्यपि उनके साधनों व कार्य करने के तरीकों में अन्तर था।

अरविन्द, जो तिलक के प्रतिनिधि थे, भारतीय राष्ट्र के आरम्भिक शिल्पियों में से एक थे। एक प्रथम श्रेणी के देशभक्त होने के अतिरिक्त वे एक मानवता प्रेमी भी थे। उन्होंने न केवल 1907 से 1909 में भारत की स्वतन्त्रता का ही नेतृत्व किया, अपितु विश्व संघ के द्वारा विश्व एकता के भी पक्ष पोषक थे। वे चाहते थे कि भारत पश्चिम को आध्यात्मिक प्रकाश प्रदान करे, जो भौतिकतावाद के कारण उद्विग्न होकर विनाश के द्वार पर खड़ा है। यह तभी सम्भव है जब भारत स्वतन्त्रता का आनन्द ले। उनका मुख्य योगदान यह है कि उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी राजनैतिक विचारों को निकट लाने का यत्न किया है।[2]

अरविन्द राष्ट्रीय चिन्तन को तीन विचारधाराओं में विभाजित करते थे – (क) ब्रिटिश, (ख) उदारवादी, (ग) राष्ट्रवादी। ब्रिटिश समर्थक विचार के लोग ब्रिटिश शासन में पूरी तरह से सन्तुष्ट थे तथा प्रशासन में बहुत कम हिस्सा चाहते थे। उदारवादी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वशासन की मांग करते थे, इसके लिए भी वह बहुत समय के लिए प्रतिक्षा करने को तैयार थे। राष्ट्रवादी स्वतन्त्रता की प्राप्ति से कम किसी चीज से सन्तुष्ट नहीं थे, चाहे वह स्वतन्त्रता ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत हो या उसके बाहर हो। राष्ट्रवादियों का यह निश्चित दृष्टिकोण था कि भारत स्वतन्त्रता के लिए सर्वथा उपयुक्त है। उनका मानना था कि स्वायतत्ता या स्वशासन के बीच, स्वतन्त्रता अथवा परतन्त्रता के बीच किसी एक को चुनने के विकल्प को नहीं सोचना है, बल्कि स्वतन्त्रता अथवा मृत्यु में से एक को चुनना है, अरविन्द इस राष्ट्रवाद के सबसे अधिक समर्थक थे। उन्होंने स्वतन्त्रता की मांग करके राष्ट्रवाद के चिन्तन को नई शक्ति दी थी। उनका राष्ट्रवाद हिंसात्मक उग्रवाद की भावना से सर्वथा मुक्त है। उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा परतन्त्रता की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसन्द करती थी। शान्तिपूर्ण प्रतिरोध की उनकी धारणा, जो कार्य साधकता पर आधारित है, आर्थिक तर्कसंगत और व्यवहारिक प्रतीत होती है। वह भारत माता को विदेशी स्वामियों के चगुल से मुक्त कराने के लिए हिंसात्मक प्रतिरोध की संभावना से इन्कार नहीं करते। उन्होंने मातृभूमि के लिए की गई क्रान्तिकारियों की हिंसक कार्यवाहियों को निन्दा नहीं की थी। उनका यह मत उचित ही था कि इस प्रकार की कार्यवाहियों से अंग्रेजों का मनोबल क्षीण होता है। इस प्रकार अरविन्द की विचारधारा ने अपने प्रवाह में न केवल शान्तिपूर्ण प्रतिरोध को ही लपेटा, वरन् क्रान्ति का पथ भी उसी में समाविष्ट किया था। पूर्ण स्वराज्य के पक्ष पोषक होने के नाते वह उन लोगों की कोटि में नहीं आते, जो स्वराज्य को मात्र एक राजनैतिक नारा ही समझते थे अथवा मात्र एक बौद्धिक विचार समझते थे। उनके लिए स्वराज्य एक श्रेष्ठ भावना थी और देशभक्ति धर्म। इसके अतिरिक्त अरविन्द का राष्ट्रवाद मात्र अपने ही देश के प्रति श्रेष्ठ प्रेम तक सीमित नहीं था। वह विश्व संस्कृति के प्रवक्ता थे। वह राष्ट्रीयता के साथ–साथ जो विश्वव्यापी है उसके भी उपासक थे।[3]

---

[2] नवजाता, श्री ओरोबिन्दो, नेशनल बुक ट्रस्ट, गाँधीनगर, नई दिल्ली, 1972, पृ० 24

[3] श्री अरविन्द, मानव एकता का आदर्श, श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डिचेरी, 1969, पृ० 312

अरविन्द ने अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के माध्यम से देशवासियों में स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत की। उनके पुरूषत्व को जगाया और उनके सामने भारत की आत्मा का चित्र स्पष्ट किया। अरविन्द के राष्ट्रवादी विचार तिलक, लाला लाजपत राय आदि से भी गहरे थे। जहाँ अन्य उग्रवादी नेताओं की राष्ट्रीयता स्वाधीनता के लिए एक राजनैतिक चीख पुकार थी, वहाँ अरविन्द की राष्ट्रीयता एक धार्मिक भावना से ओत–प्रोत थी अर्थात् ईश्वर की वाणी मानव आत्मा की अभिव्यक्ति में थी। अरविन्द के लिए उनका राष्ट्र भारत केवल एक भौगोलिक सत्ता या प्राकृतिक भूमि, खण्ड मात्र नहीं था। उन्होंने राष्ट्र को माँ माना, माँ के रूप में उनकी भक्ति की, पूजा की। उन्होंने देशवासियों को भारत माता की रक्षा और सेवा के लिए सभी प्रकार के कष्टों को सहने की मार्मिक अपील की। उन्होंने कहा कि भारत माता सदियों तक अपनी सन्तानों को झूले में झुलाती रही है और उनका पालन–पोषण करती रही है पर दुर्भाग्य से आज वह विदेशी अत्याचारों की बेडियों में जकड़ी करहा रही है और उसका स्वाभिमान नष्ट हो चुका है। भारत माता के सपूतों का कर्तव्य है कि वे माँ की गुलामी की बेड़ियाँ काट फैके। उन्होंने माँ को स्वतन्त्र करवाने के लिए बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और निष्क्रिय प्रतिरोध आदि को साधन के रूप में भारतवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया।[4]

अरविन्द घोष ने अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के माध्यम से सम्पूर्ण भारत को एकता सूत्र में बाँधा। उन्होंने भारतीयों में राष्ट्रवाद के दैवीय स्वरूप की झाँकी भर दी और उन्हें विश्वास करा दिया कि जब ईश्वरीय शक्ति से व्याप्त सम्पूर्ण राष्ट्र जागृत होकर उठ खड़ा होगा तो कोई भी भौतिक शक्ति उसका प्रतिकार नहीं कर सकेगी और संसार की कोई भी बाधा उसको अपना उद्देश्य प्राप्त करने से रोक नहीं सकेगी। एकता में महान शक्ति है।[5] यदि भारत के सभी पुत्र मिलकर मातृभूमि की पुकार पर दौड़ पड़ेंगे तो एकता साकार हो उठेगी और भारत माता अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त हो जायेगी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अरविन्द घोष ने भारत को स्वतन्त्र करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का विचार देकर विश्व में मानव एकता का आदर्श प्रस्तुत किया।[6]

जवाहर लाल नेहरू एक महान राष्ट्रभक्त व राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने राष्ट्रवाद के आदर्श रूप को स्वीकार किया और उग्र राष्ट्रवाद की धारणा को अस्वीकारा। नेहरू देशभक्त तथा राष्ट्रवादी होने के साथ–साथ शान्तिदूत, राजनेता व युगद्रष्टा पुरुष भी थे। राष्ट्रीयता सम्बन्धी उनकी मान्यता संकुचित नहीं थी। उनके अनुसार संकुचित राष्ट्रवाद किसी देश के विकास में सहायक नहीं होता है, बल्कि वह देश के विकास की गति को रोक देता है।[7]

नेहरू ने राष्ट्रवाद के आत्मस्पष्टता के नये रूप को आधुनिक समाज की संस्कृति माना। नेहरू का राष्ट्रवाद मानव की एकता तथा भेदभाव के बिना सभो के अधिकारों के प्रति समर्पण पर आधारित है। उनके एक लेख 'भारत की एकता' से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सांस्कृतिक आधार पर विकसित भारत की आधारभूत एकता में विश्वास करते थे, पर उसका रूप संकुचित

[4] श्री ओरोबिन्दो, वन्दे मातरम, श्री ओरोबिन्दो आश्रम पाण्डिचेरी, 1972, पृ० 908
[5] श्री ओरोबिन्दो, बन्दे मातरम, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी, 1972, पृ० 192
[6] रामनाथ शर्मा, राष्ट्र धर्म दृष्टा श्री अरविन्द, विनित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1980, पृ० 110
[7] नेहरू वाङ्मय, खण्ड–9, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1960, पृ. 118

अर्थ में धार्मिकता का नहीं था। उनका विचार था कि अनेक विविधताओं के बावजूद भारतीय इतिहास में एकता का एक अविचित्र सूत्र पाया जाता है। राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सांस्कृतिक, विविधतावादी व समन्वयवादी था जो मुख्यतः रविन्द्रनाथ टैगोर के समन्वयात्मक सार्वभौमवाद पर आधारित था तथा जो स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष के धर्ममूलक राष्ट्रवाद से भिन्न था। राष्ट्रवाद की नेहरू की कल्पना केवल धर्म जैसी भावनात्मक न होकर ऐसी थी जिसे जनता के ठोस राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक लाभों से जोड़ा जा सके तथा जनता के लिए जीवनोपयोगी बनाया जा सके।[8]

नेहरू की राष्ट्रीयतता की भावना उनके समय की परिस्थितियों की उपज थी। उनकी राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित करने वाला सबसे प्रमुख कारण भारत में रहने वाले अंग्रेजों द्वारा जातीय श्रेष्ठता का प्रदर्शन था जिसे भारतीय राष्ट्रीयता के लिए एक चुनौती समझते थे।[9]

अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का आर्थिक शोषण, उनकी राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित करने वाला दूसरा कारण था। नेहरू का राष्ट्रवाद मानव की एकता तथा भेदभाव के बिना सभी के अधिकारों के प्रति समर्पण पर आधारित है। उनके अनुसार राष्ट्रवाद व अन्तर्राष्ट्रीयवाद के अन्तर के लिए उपनिवेशवाद का विरोध का अर्थ था कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के चंगुल से आजाद करवाया और इसके लिए नेहरू ने अपने राष्ट्रवादी विचारों को भारत के जन–जन तक पहुँचाया। नेहरू राष्ट्रवादी होने के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीयवादी भी थे। उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद साम्राज्यवाद क विरोध पर आधारित था। नेहरू का विचार था कि आक्रामक राष्ट्रवाद औद्योगिक प्रतियोगिता के तत्व के कारण जिसका शब्द साम्राज्यवाद का हो जाता है, विश्व समाज की विकृति है, जिससे विश्व को शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पाना समय की मांग है। नेहरू की मान्यता थी कि संकुचित रूप मं राष्ट्रीयता की बात करना, अब अप्रासंगिक व असामाजिक है, क्योंकि जीवन के सभी क्षेत्रों में विश्व के विविध राष्ट्र अब परस्पर निर्भर हो गए हैं और विश्व का कल्याण अब राष्ट्रवाद की विकृति पर आधारित साम्राज्यवाद के द्वारा नहीं वरन् विविध राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीयता के द्वारा हो सकता है।[10]

नेहरू ने अपने धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद के माध्यम से भारत को अंग्रेजों के चंगुल से स्वतन्त्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया और सोए हुए भारतीयों में देश भक्ति आर राष्ट्र प्रेम की भावना का संचार किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने समान्तर चल रहे 'स्वराज्य' तथा 'आर्थिक न्याय' के लिए संघर्ष के आन्दोलन का समन्वय किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने कहा कि "हम अपने देश और अपन विश्वास के लिए लड़ रहे है। मैं बहुत अधिक खुशी से अपनी इच्छानुसार जेल जाऊँगा, जेल तो हम लोगों के लिए सचमुच स्वर्ग हो गया है, तीर्थ यात्रा का पवित्र स्थान है। मैं अपने सौभाग्य पर आश्चर्य करता हूँ,

[8] जवाहर लाल नेहरू, श्रद्धाजंली, सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1980, पृ० 111
[9] जवाहर लाल नेहरू, नेहरू वाङ्मय, खण्ड–3, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 1960, पृ० 446
[10] जवाहर लाल नेहरू, दी डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, दी सिगनेट प्रैस, कलकत्ता, 1946, पृ० 455

स्वतन्त्रता संग्राम में भारत की सेवा करना कितना सम्मानजनक है। इस प्रकार के विचार व्यक्त करके नेहरू ने भारतीय नागरिकों में राष्ट्रप्रेम की भावना को भर दिया। नेहरू राष्ट्रवाद की भावना को स्वतन्त्रता की अनिवार्य शर्त मानते थे। उन्होंने अपने देश की स्वतन्त्रता के साथ–साथ अन्य सभी पराधीन देशों की भी स्वतन्त्रता की बात की। नेहरू का राष्ट्रवाद अतीत, वर्तमान व भविष्य के समन्वय पर आधारित है जो सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण पर आधारित है और एक प्रेरणा स्रोत है।[11]

अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू ने अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुसार राष्ट्रवाद के समन्वय में अपने विचार दिये। उनके विचार समय व परिस्थितियों के अनुसार थे। राष्ट्रवाद की भावना को लेकर अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू के दृष्टिकोण में कुछ समानता तथा कुछ असमानता रही, लेकिन दोनों विद्वानों का मुख्य उद्देश्य एक ही था, राष्ट्र को अंग्रेजों से मुक्त करवाना। अरविन्द घोष तथा नेहरू दोनों ने ही काँग्रेस व माडरेट द्वारा किये जा रहे कार्यों को अधूरा बताया और काँग्रेस को अपने कार्यों व उद्देश्यों को बदलने की सिफारिश की क्योंकि दोनों का ही मानना था कि इन कार्यों के द्वारा ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र नहीं करेगी। दूसरा, दोनों ने ही पूर्ण स्वाधीनता का समर्थन किया। दोनों ने ही संकुचित राष्ट्रवाद के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीयता के महत्व को स्वीकार किया क्योंकि दोनों ही विद्वानों का मानना था कि संकीर्ण व संकुचित राष्ट्रवाद विश्व शान्ति के विरूद्ध होता है। दोनों ही विद्वानों ने अपने राष्ट्रवादी विचारों में मानवतावादी दृष्टिकोण को महत्व दिया। इन दोनों ही विद्वानों के राष्ट्रवादी विचारों में एक समानता यह भी थी कि दोनों ने ही राष्ट्रीय आन्दोलनों में साधारण जनता की भागीदारी को महत्वपूर्ण माना और यह मानना कि बिना साधारण जनता के सहयोग से भारत स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इन दोनों विद्वानों में एक समानता यह भी थी कि दोनों ही विद्वानों ने बहिष्कार, असहयोग व स्वदेशी का समर्थन किया तथा इनको स्वतन्त्रता प्राप्ति के साधनों के रूप में प्रयोग किया।[12]

अरविन्द घोष तथा नेहरू के राष्ट्रवादी विचारों में समानताओं के साथ–साथ असमानताएँ भी थी। अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवाद का सबसे बड़ा अन्तर यह था कि अरविन्द ने अपने राष्ट्रवाद को आध्यात्मवाद व धर्म से जोड़ा जबकि नेहरू ने अपने राष्ट्रवाद को धर्म व आध्यात्मवाद से दूर रखा तथा धर्म–निरपेक्षता के आधार पर अपने राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार दिये थे। अरविन्द घोष ने ब्रिटिश साम्राज्य से भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए हिंसात्मक साधनों के प्रयोग करने की बात को उचित बताया जबकि नेहरू हिंसात्मक साधनों की अपेक्षा अहिंसात्मक साधनों पर ज्यादा विश्वास करते थे। अरविन्द ने अपने राष्ट्रवाद के माध्यम से हिन्दू धर्म व सनातन धर्म को श्रेष्ठ साबित करते हुए राष्ट्रवाद को धर्म से जोड़ा।[13] जबकि नेहरू स्वयं हिन्दू होते हुए भी धार्मिकता को एक बुराई मानते थे तथा

[11] जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1963, पृ० 768

[12] विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, दी पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ श्री ओरोबिन्दो, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1960, पृ० 256

[13] भुवनेश्वर नाथ मिश्र, श्री अरविन्द चरितामृत, पूर्वोक्त, पृ० 81

उन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद व मुस्लिम राष्ट्रवाद का विरोध किया।[14] अरविन्द घोष ने मातृभूमि की व्याख्या भी आध्यात्मिक रूप में की तथा उसे दिव्य शक्ति माना जबकि नेहरू ने मातृभूमि की व्याख्या भावनात्मक रूप में की थी।[15] उन्होंने राष्ट्रवाद के अन्तर्गत मातृभूमि के लिए रोमांचपूर्ण वर्णन किया था। अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में एक असमानता यह थी कि अरविन्द ने भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन इसलिए किया कि वो मानते थे कि भारत स्वतन्त्र होकर विश्व में आध्यात्मिक रोशनी फैलाएगा तथा इसके लिए भारत का स्वतन्त्र होना आवश्यक है, जबकि नेहरू ने भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन इसलिए किया कि भारत के लोगों का यह अधिकार है कि वो अपने देश में स्वतन्त्रतापूर्वक व दासता से दूर जीवन व्यतीत कर सकें। अरविन्द घोष ने राष्ट्रवाद को परमात्मा का आदेश माना था। उसे एक प्रकार का अवतार माना जबकि नेहरू की ईश्वर व देवताओं के सन्दर्भ में कोई रूचि नहीं थी। उन्होंने आध्यात्मिक शब्द का प्रयोग केवल नैतिक अथवा मानसिक स्वरूप में किया।[16]

यह सत्य है कि इन दोनों विद्वानों के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों में कुछ असमानताएँ भी हैं परन्तु वे असमानताएँ समानताओं के आगे ज्यादा महत्व नहीं रखती हैं। दोनों ने ही अपने–अपने ढंग से भारत को स्वतन्त्र करवाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दोनों के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों का मूल आधार तो एक ही था और वो था भारत को विदेशी दासता से स्वतन्त्र करवाना और इसमें दोनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महत्व और प्रासंगिकता

अरविन्द घोष तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों का वर्णनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम पाएंगे कि उनके राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार वर्तमान में भी उतने ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितने उस समय थे। वर्तमान समय में भारत जैसे देश में निरन्तर हिंसात्मक गतिविधियाँ, आतंकवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार, क्षेत्रीयवाद, धर्म के नाम पर सम्पूर्ण समाज में समस्याएँ उत्पन्न हो रही। धर्म एवं जाति के नाम पर लोग आपस में लड़ रहे हैं और चारों ओर अशान्ति का वातावरण है। हिन्दू मुस्लिम की ईर्ष्या निरन्तर बढ़तो जा रही है। ऐसी परिस्थितियाँ सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास में बाधक है। नागरिकों के हृदय से लगातार देश–प्रेम की भावना समाप्त होती जा रही है, इसलिए कुछ व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ के लिए राष्ट्र को हानि पहुंचाते हैं। उदाहरण के लिए भारत तथा सम्पूर्ण विश्व में आतंकवादो गतिविधियाँ हो रही हैं। जैसे – भारत में 1993 में हुआ बम विस्फोट, अमेरिका में घटी 5 सितम्बर, 2011 की घटना, 2001 में भारत की संसद पर हुआ आतंकवादी हमला, नवम्बर 2008 में मुम्बई के ताज होटल पर आतंकवादी हमला, छत्रपति शिवाजी रेलवे स्टेशन पर बम विस्फोट आदि अनेक घटनाएँ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। इन घटनाओं को अंजाम देने में उस राष्ट्र के गद्दार अर्थात् राजद्रोही नागरिकों की अहम् भूमिका होती है। इसलिए आतंकवाद आज सम्पूर्ण विश्व में फैल चुका है। ऐसी परिस्थितियों में हमें

[14] सलैक्टीड वर्क्सस ऑफ जवाहर लाल नेहरू, वॉल्यूम 2, बी०आर० पब्लिकेशन कार्पोरेशन, दिल्ली, 1979, पृ० 272

[15] श्री ओरोबिन्दो, इंडियाज रिबर्थ, मीरा अदिति सेन्टर, मैसूर, 1993, पृ० 42

[16] भुवनेश्वर नाथ मिश्र, श्री अरविन्द चरितामृत, पूर्वोक्त, पृ० 89

अरविन्द घोष के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरू के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद के विचारों को अपनाने की आवश्यकता है। [17]

अरविन्द घोष ने अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में राष्ट्र को माँ का दर्जा दिया है और राष्ट्र अर्थात् माँ को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करवाने के लिए भारत के लोगों का आह्वान किया। उन्होंने उस समय लोगों में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रवाद की भावना का संचार किया। नागरिकों ने उस समय अपनी माँ को आजाद करवाने के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया और अन्त में भारतमाता को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करवाया। इसके अतिरिक्त अरविन्द घोष ने कहा है कि नेताओं तथा उनके अनुयायियों को भी नैतिकता तथा आध्यात्मिकता दोनों प्रकार का प्रशिक्षण लेना होगा, तभी भारत के प्रत्येक नागरिक जिसमें नेता, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, उद्योगपति, सरकारी कर्मचारी आदि सभी को इसी नैतिकता, ईमानदारी, राष्ट्रभक्ति तथा आध्यात्मिकता को अपनाने की आवश्यकता है ताकि भारत में फैली बुराईयों को जड़ से समाप्त किया जा सके क्योंकि जब राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक राष्ट्रभक्त और ईमानदार हो जायेगा तो, भारत से सभी समस्याएँ अपने आप ही समाप्त हो जायेंगी।[18]

अतः वर्तमान समय में, समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए हमें अरविन्द घोष की आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की विचारधारा पर आधारित दर्शन को अपनाने की अति आवश्यकता है, ताकि प्रत्येक समाज सामाजिक सन्तुलन की स्थिति प्राप्त कर सके। सामाजिक सन्तुलन लाने के लिए, प्रत्येक भारतीय को अपने जीवन में अरविन्द घोष के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की विचारधारा को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप में लागू करना होगा, उसके पश्चात् ही समाज के विभिन्न समुदायों से जुड़े लोग सामाजिक बुराइयों को त्यागकर एक 'सात्विक जीवन' व्यतीत कर सकेंगे। यह तभी संभव है, जब समाज का प्रत्येक प्राणी अपने हृदय में अरविन्द घोष के राष्ट्रवाद से जुड़े अध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्वयं भी अपनाएँ और दूसरों को अपनाने के लिए भी प्रेरित करें।

इसी प्रकार जवाहर लाल नेहरू के धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार वर्तमान समय में भी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितने उस समय थे। जिस प्रकार नेहरू ने उस समय अपने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों के माध्यम से लोगों ने राष्ट्रप्रेम की भावना को जागृत किया और उसके भारत को अंग्रेजों के चंगुल से आजाद करवाया। आज भी हम सम्पूर्ण विश्व में फैली बुराईयों को नेहरू के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद के माध्यम से समाप्त कर सकते हैं। नेहरू का राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं था। वह सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण में भारत के कल्याण को देखते थे। उनका राष्ट्रवाद मानवता के आदर्श को स्वीकार करता है और अन्तर्राष्ट्रीयवाद का समर्थन करता है। आज यदि नेहरू के धर्म निरपेक्ष राष्टवाद सम्बन्धी विचारों को अपनाया जाये तो देश में जो धर्म, जाति, सम्प्रदाय के आधार पर झगड़े पैदा हो रहे हैं। उन्हें समाप्त किया जा सकता है और भारत को एक महान् राष्ट्र बनाया जा सकता है। नेहरू ने राष्ट्रवाद के भावनात्मक पक्ष का भी समर्थन किया। उनका मानना था कि भारत में भिन्न–भिन्न धर्म,

[17] एस० के० मित्तल, श्री ओरोबिन्दोज इण्डीग्रल एप्रोज टू पॉलिटिकल थॉट, विनीत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1981, पृ० 186

[18] विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, दी पॉलिटिकल फिलॉस्पी ऑफ दी ओरोबिन्दो, पूर्वोक्त, पृ० 206–207

जाति, नस्ल, वर्ग, स्थान होते हुए भी भारत के लोग इकट्ठे रहते हैं। इसका कारण राष्ट्रवाद की भावना ही है। नेहरू के लोकतान्त्रिक समाजवाद पर आधारित राष्ट्रवाद का भी समर्थन किया है। यह इसलिए नहीं कि अरविन्द घोष राजनैतिक सुधार करना चाहते थे बल्कि इसके माध्यम से नेहरू अपने देश का सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण करना चाहते थे। स्वतन्त्र भारत में नेहरू ने अपने धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद को भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाकर फलीभूत किया। आज भी स्वतन्त्र भारत में सभी धर्मों से जुड़े लोग रह रहे हैं। जवाहर लाल नेहरू के मूल सिद्धान्तों के आधार पर भारतीय विदेश नीति गठित हुई है। पूरे विश्व को नेहरू ने एक बड़ा समुदाय माना और अन्तर्राष्ट्रीयवाद का समर्थन किया तथा उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद की हमेशा निन्दा की। जवाहर लाल नेहरू ने किसी गुट से न जुड़कर, गुट निरपेक्षता की नीति को अपनाया जो कालान्तर में पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा गुट निरपेक्षता को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा देकर, भारत का पूरे विश्व में मान बढ़ाया। नेहरू ने पंचशील के सिद्धान्त, धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद, अन्तर्राष्ट्रीयवाद, गुटदृनिरपेक्षता की नीति, हिन्दू–चीनी भाई–भाई का नारा देकर पूरे विश्व में शान्ति और अमन की रोशनी फैलाई। इसलिए आज भी हमें नेहरू के धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों को अपनाने की आवश्यकता है, तभी समाज में फैली बुराईयाँ समाप्त हो सकती हैं। उनके विचार वर्तमान समय में भी महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है और भविष्य में भी रहेंगे।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद की भावना भी वर्तमान समय में निरन्तर अपना अस्तित्व खोती जा रही है। जिस राष्ट्रवाद की भावना की शक्ति के आधार हमारे राष्ट्रीय नेताओं और स्वतन्त्रता संग्राम के योद्धाओं ने हमें स्वतन्त्रता दिलाई और जिसके बल पर बड़ी से बड़ी समस्याओं को हल करने का प्रयास किया गया तथा कामयाब भी हुए थे। वहीं शक्ति आज कम होती जा रही है। आज के इस भौतिक युग में राष्ट्रवाद की भावना कहीं दिखाई नहीं देती। सभी लोग अपने–अपने स्वार्थों को पूरा करने में लगे हुए हैं, वे चाहे सामप्रदायिकता से सम्बन्धित हो, धन से या किसी अन्य स्वार्थ से सम्बन्धित हो। आज चाहे हमने बहुत विकास कर लिया है, परन्तु सही मायने में जब तक उन्नति नहीं कर सकते जब तक हमारे दिलों में देश या राष्ट्र के प्रति राष्ट्र–प्रेम और जज्बा अर्थात् अपना सर्वस्व कुर्बान करने की तीव्र भावना नहीं होगी क्योंकि देश लोगों से नहीं पहचाना जाता है, बल्कि लोग देशों से पहचाने जाते हैं। आज देश के अन्दर भ्रष्टाचार, हिंसात्मक गतिविधियाँ, जातिवाद, क्षेत्रीयवाद, नैतिकता का पतन आदि समस्याएँ फैली हुई हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र में ही नहीं समूचे विश्व में अशान्ति और भय का वातावरण फैला हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में भारत को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों को सख्ती से अपनाने तथा व्यवहार में लागू करने की आवश्यकता है।

निश्कर्श

संक्षेप में कह सकते हैं कि राष्ट्रवाद की भावना एक घनात्मक शक्ति का स्रोत है और अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू ने उसी शक्ति को पहचान कर राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अपने विचार दिये। यद्यपि दोनों विद्वानों के विचार राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में एक समान नहीं थे। अरविन्द घोष ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का समर्थन किया क्योंकि उनका मानना था कि भारत पश्चिमी देशों को आध्यात्मिक रोशनी प्रदान करेगा जिसके परिणामस्वरूप पश्चिमी देश भौतिकवाद से ग्रस्त भावना से निकलकर अध्यात्मक की ओर मोड़कर लोगों को सन्तुलित समाज में जीने के लिए प्रेरित करंगे। इसके विपरीत जवाहर लाल नेहरू ने धर्म–निरपेक्षता के दृष्टिकोण पर आधारित राष्ट्रवाद का समर्थन किया और इसी के आधार पर विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप विभिन्न धर्मों के लोगों के दिलों में पनपता धर्मोन्माद धीरे–धीरे कम होता गया और सभी धर्मो और जातियों के लोगों ने स्वतन्त्रता संग्राम में बढ़चढ़कर भाग लिया और अन्ततः स्वतन्त्र हुआ।

आज भी हम अरविन्द घोष तथा जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार अपनाकर और उन्हें व्यवहार में लागू करके भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में विकास, शान्ति एवं भाई–चारे की भावना का वातावरण तैयार करके समूचे विश्व में विकास का रास्ता अग्रसर कर सकते हैं।

संदर्भ सूचीः

1. जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1963, पृ०48
2. नवजाता, श्री ओरोबिन्दो, नेशनल बुक ट्रस्ट, गाँधीनगर, नई दिल्ली, 1972, पृ० 24
3. श्री अरविन्द, मानव एकता का आदर्श, श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डिचेरी, 1969, पृ० 312
4. श्री ओरोबिन्दो, वन्दे मातरम, श्री ओरोबिन्दो आश्रम पाण्डिचेरी, 1972, पृ० 908
5. श्री ओरोबिन्दो, बन्दे मातरम, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी, 1972, पृ० 192
6. रामनाथ शर्मा, राष्ट्र धर्म दृष्टा श्री अरविन्द, विनित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1980, पृ० 110
7. नेहरू वाङ्मय, खण्ड–9, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्लो, 1960, पृ. 118
8. जवाहर लाल नेहरू, श्रद्धाजंली, सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1980, पृ० 111
9. जवाहर लाल नेहरू, नेहरू वाङ्मय, खण्ड–3, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 1960, पृ० 446
10. जवाहर लाल नेहरू, दी डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, दी सिगनेट प्रैस, कलकत्ता, 1946, पृ० 455
11. जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1963, पृ० 768
12. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, दी पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ श्री ओरोबिन्दो, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1960, पृ० 256
13. भुवनेश्वर नाथ मिश्र, श्री अरविन्द चरितामृत, पूर्वोक्त, पृ० 81
14. सलैक्टीड वर्क्सस ऑफ जवाहर लाल नेहरू, वॉल्यूम 2, बी०आर० पब्लिकेशन कार्पोरेशन, दिल्ली, 1979, पृ० 272

15. श्री ओरोबिन्दो, इंडियाज रिबर्थ, मीरा अदिति सेन्टर, मैसूर, 1993, पृ० 42
16. भुवनेश्वर नाथ मिश्र, श्री अरविन्द चरितामृत, पूर्वोक्त, पृ० 89
17. एस० के० मित्तल, श्री ओरोबिन्दोज इण्डीग्रल एप्रोज टू पॉलिटिकल थॉट, विनीत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1981, पृ० 186
18. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, दी पॉलिटिकल फिलॉस्पी ऑफ दी ओरोबिन्दो, पूर्वोक्त, पृ० 206–207